आज के ट्वीट

केजरीवाल के पास गुलाम अली की सुरक्षा के लिए भले ही सुरक्षाबलों की फौज हो, पर वे दिल्ली में अब भी दुष्कर्म की वारदातें नहीं रोक सके। कहां हैं सीसीटीवी? **-अभिषेक सिंघवी**

जो जितने अधिक जिम्मेदार पद पर हो, उसे उतना अधिक संयमित होना चाहिए। व्यक्तिगत अनुशासन, प्रशिक्षण व जागरुकता जरूरी है। **-किरन बेदी**

गुजरात का विनाशकारी मॉडल देश की एकता, संप्रभुता, अखंडता के लिए घातक सिद्ध होता जा रहा है। अब इनकी पोल खुल रही है। **-लालू प्रसाद यादव**

विचार

हमारी सबसे बड़ी कमजोरी हार मान लेना है। सफल होने का सबसे निश्चित तरीका है हमेशा एक और बार प्रयास करना। -थॉमस अल्वा एडिसन

लेखकों की खेमेबंदी

साहित्य अकादेमी ने चुप्पी तोड़ी। तकरीबन 35 लेखकों के साहित्य अकादेमी पुरस्कार लौटाने के बाद उसकी कार्यसमिति ने प्रस्ताव पारित कर तर्कवादी बुद्धिजीवी एमएम कलबुर्गी की हत्या की निंदा की। केंद्र और राज्य सरकारों से कहा कि वे लेखकों पर ऐसे हमले रोकने के उपाय करें। साथ ही पुरस्कार लौटाने वाले साहित्यकारों से आग्रह किया कि वे अपना सम्मान वापस ले लें। लेकिन ऐसा होने के पहले लेखकों की खेमेबंदी खुलकर सामने आ चुकी थी। नई दिल्ली में हुई अकादेमी की बैठक के मौके पर असंतुष्ट साहित्यकारों और उनके समर्थकों ने मौन जुलूस निकाला, तो उसके जवाब में लेखकों का एक दूसरा गुट आ खड़ा हुआ। इस समूह ने अपना नाम 'जनमत' रखा है। वैसे तो पुरस्कार लौटाने की पहल हिंदी साहित्यकार उदय प्रकाश ने कलबुर्गी की हत्या के तुरंत बाद की थी, लेकिन उत्तर प्रदेश में दादरी कांड के बाद जब नयनतारा सहगल ने अपना सम्मान लौटाया, तो उसके बाद ऐसा करने का सिलसिला चल पड़ा। शशि देशपांडे और के. सच्चिदानंदन जैसे लेखकों ने साहित्य अकादेमी के अपने पद छोड़ दिए। उन सबकी शिकायत है कि अकादेमी लेखकों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्ष में खड़ा होने में विफल रही है। मगर लेखकों के दूसरे समूह का आरोप है कि ये लेखक राजनीति कर रहे हैं। इनमें ऐसे साहित्यकार शामिल हैं, जिन्होंने नरेंद्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने का विरोध किया था। आज भी उनका विरोध उसी भावना से प्रेरित है। मगर 'जनमत' समूह के जवाबी प्रदर्शन में भी ज्यादातर ऐसे नाम शामिल नजर आए, जिनकी पहले से भाजपा समर्थक पहचान है। यानी उनका सियासी रुझान भी जाहिर है। तो कुल तस्वीर यह है कि साहित्यकार समुदाय अपने-अपने राजनीतिक झुकावों के मुताबिक बंट गया है। सरकार विरोधी समूह समाज में असहिष्णुता बढ़ने और भारत की पहचान बदलने की कथित कोशिशों से खुद को बेचैन बताता है, मगर सरकार समर्थक समूह को ऐसी स्थिति नजर नहीं आती। इस बीच साहित्यकारों की सर्वोच्च संस्था होने के नाते साहित्य अकादेमी के सामने चुनौती पूरे लेखक समुदाय को साथ लेकर चलने की है। इसीलिए उसने खुद को लेखकों पर हुई हिंसा तक सीमित रखा। उसकी कार्यसमिति के एक सदस्य ने कहा कि सभी लेखक हत्याओं की निंदा करने के सवाल पर एकजुट हैं। मगर उसके प्रस्ताव से प्रतिरोधी लेखक समूह कितना संतुष्ट होता है, यह देखने वाली बात होगी। फिलहाल अकादेमी इस्तीफा देने या पुरस्कार लौटाने वाले साहित्यकारों के निर्णय का इंतजार करने के मूड में है। अगले 17 दिसंबर को अकादेमी बोर्ड की बैठक होगी, जिसमें लेखकों के विरोध से उत्पन्न स्थिति पर विचार होगा। बहरहाल, असंतुष्ट साहित्यकारों के लिए उचित यही होगा कि जब अकादेमी ने चुप्पी तोड़ दी है, तो वे पुरस्कार वापस लेने की उसकी अपील पर ध्यान दें। वे देश के हालात से खफा हैं, तो उस पर विरोध जताने के लिए दूसरे एवं रचनात्मक तरीके उन्हें ढूंढ़ने चाहिए। साहित्य की सर्वोच्च संस्था को यूं विवादास्पद बनाना किसी के भी हित में नहीं है।

असंतुष्ट लेखकों के लिए उचित यही होगा कि जब अकादेमी ने चुप्पी तोड़ दी है, तो वे पुरस्कार वापस लेने की उसकी अपील पर ध्यान दें।

कुछ तो है जिसकी परदादारी है

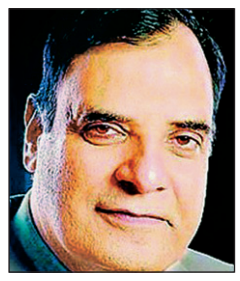

आलोक मेहता
alokmehta7@hotmail.com

पारदर्शिता के परिप्रेक्ष्यों में निहित अंतर्विरोधों को आंख से ओझल नहीं होने देना चाहिए। एक तरफ तो सरकार के प्रभावशाली नेता-मंत्री सुप्रीम कोर्ट के फैसले को लोकतंत्र विरोधी बता रहे हैं, लेकिन दूसरी तरफ सत्ता के गलियारों में पारदर्शिता घटने की स्थिति पर ध्यान भी नहीं देना चाहते हैं। सरकारों ने तो सूचना उपलब्ध कराने की व्यवस्था पर ही जंजीरें डाल दी हैं।

सरकार ने न्यायपालिका में अधिक पारदर्शिता का शंख बजाया है, जो कि सराहनीय ही है। विशेष रूप से न्यायाधीशों की नियुक्तियों में पारदर्शिता पर जोर दिया जा रहा है और इस सवाल पर न्यायपालिका से सरकार की ठनी हुई है। संसद से पारित एक विधेयक के तहत न्यायाधीशों की नियुक्ति में सरकार की भूमिका अधिक शक्तिशाली हो जाने के प्रयास को सुप्रीम कोर्ट ने हाल ही अपने एक फैसले में रद्द कर दिया। फिर भी नियुक्तियों में पारदर्शिता के मुद्दे पर सुप्रीम कोर्ट ने विचार जारी रखने की व्यवस्था कर दी है। यह एक आशाजनक पहल ही मानी जानी चाहिए।

हाल ही में सूचना का अधिकार (आरटीआई) कानून बने दस साल पूरे हुए हैं। इस अवसर पर हमें पारदर्शिता के परिप्रेक्ष्यों में निहित अंतर्विरोधों को आंख से ओझल नहीं होने देना चाहिए। मिसाल के तौर पर एक तरफ तो सरकार के प्रभावशाली नेता-मंत्री सुप्रीम कोर्ट के फैसले को लोकतंत्र विरोधी बता रहे हैं, लेकिन दूसरी तरफ अपनी सत्ता के गलियारों में पारदर्शिता बढ़ने के बजाय घटने की स्थिति पर ध्यान भी नहीं देना चाहते हैं। दुःखद स्थिति तो यह है कि केंद्र और कुछ प्रदेशों की सरकारों ने सूचना उपलब्ध कराने की व्यवस्था पर ही जंजीरें डाल दी हैं। पारदर्शिता की आवाज उठाने वाले व्यक्तियों और संगठनों पर ही पहरे लगाए जा रहे हैं। सबसे मजेदार स्थिति तो राजस्थान की है।

सनद रहे कि सूचना के अधिकार के आंदोलन में राजस्थान अग्रणी रहा है। यही नहीं, वर्ष 1977-78 में भैंरोसिंह शेखावत के मुख्यमंत्रित्वकाल में ही यहां सूचना के अधिकार की पहल हो गई थी। बाद में ईमानदार और सुशिक्षित समाजसेवी अरुणा राय के नेतृत्व में हजारों शिक्षित-अशिक्षित लोगों ने सूचना के अधिकार की लड़ाई लड़ी। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप वर्ष 2005 में राष्ट्रीय स्तर पर सूचना के अधिकार का कानून बना।

लेकिन उसी राजस्थान में मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे के सत्ता में आने के बाद पिछले डेढ़ बरस में सूचना अधिकार आयुक्तों का दफ्तर ही सूना हो गया है और सूचना मांगने के सैकड़ों आवेदन

फाइलों में पड़े धूल खा रहे हैं। वजह यह है कि राज्य सूचना आयोग के लिए 10 आयुक्तों में से नौ स्थान कई महीनों से खाली पड़े हैं। सरकार की मंशा लगती है कि 'न रहेगा सुनने वाला आयुक्त और न ही होगी सुनवाई।'

हाल ही में सूचना का अधिकार कानून की दसवीं सालगिरह पर आयोजित एक समारोह में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने तालियों की गड़गड़ाहट के बीच कहा - "सरकार से सवाल पूछने का अधिकार लोकतंत्र में आस्था पैदा करता है।" लेकिन उनकी सरकार आने के बाद केंद्र में भी मुख्य सूचना आयुक्त की नियुक्ति महीनों तक लटकी रही। यही नहीं, सूचना मांगने के आवेदनों की हजारों फाइलों पर तो अभी तक विचार ही नहीं किया जा सका है। सरकार द्वारा जारी अधिकृत आंकड़ों के अनुसार सूचना के अधिकार के तहत आए करीब नौ लाख 62 हजार आवेदन फिलहाल विचाराधीन हैं। कहा जा सकता है कि इस संख्या में निरंतर इजाफा होने वाला है।

यों देश में इस अधिकार के प्रति लगातार बढ़ रही जागरुकता का ही यह परिणाम है कि इन दस वर्षों में सूचना के अधिकार का उपयोग करने वाले नागरिकों की संख्या 80 लाख तक पहुंच गई है। दूसरी तरफ सरकारी नेताओं और अफसरों का कष्ट बढ़ता जा रहा है। वे सूचना को छिपाने, दबाने, आवेदन को विभिन्न विभागों में घुमाने के हथकंडे अपनाने लगे हैं। इसका सबसे कारगर जवाबी फॉर्मूला यह है कि "फिलहाल यह जानकारी शीर्ष स्तर पर पहुंची फाइलों में है। उपलब्ध होने पर सूचित किया जाएगा।" आलम यह है कि संबंधित मंत्रालयों के मंत्री या भाजपा के सांसदों को ही कई जानकारियां नहीं मिल पातीं।

सूचना-प्रसारण और वित्त मंत्री अरुण जेटली न्यायपालिका में पारदर्शिता की बात कर रहे हैं। लेकिन वास्तव में उनके अपने मंत्री साथियों को मंत्रिमंडल की बैठक की कार्यसूची के प्रस्तावों का विस्तृत विवरण पहले नहीं मिल पाता। ऐसा लगता है कि सरकार को अपनों से ही 'लीक' होने का खतरा लगता है। इसलिए बैठक में पहुंचने पर ही कई मंत्रियों को प्रस्तावों की पूरी जानकारी मिल पाती है। इसका नफा-नुकसान यह होता है कि बैठक में प्रधानमंत्री या उनके द्वारा अनुमति प्राप्त वरिष्ठ मंत्री ही विचाराधीन विषयों पर अपनी बात रख पाते हैं। मंत्रियों को केवल उनकी बातें सुनने की सुविधा है। कार्यसूची के प्रस्तावों का विवरण पहले मिलने पर ही तो मंत्रिगण पहले से ही सोच-समझकर कुछ राय दे सकते हैं अथवा सवाल कर सकते हैं। अन्यथा कुछ मिनटों की बैठक में नए मुद्दों पर फटाफट अपनी राय कोई मंत्री कैसे दे सकता है। मनमोहन सिंह, अटल बिहारी वाजपेयी, मोरारजी देसाई और पं. जवाहरलाल नेहरू तक के प्रधानमंत्रित्वकाल में मंत्रिमंडल की बैठक से पहले कार्यसूची के प्रस्तावों के विवरण भेजे जाते रहे हैं, ताकि मंत्रिगण बैठक में खुलकर अपनी राय व्यक्त कर सकें। लेकिन जब मंत्रियों को ही कोई निर्णय ले लिए जाने के बाद सूचना पाने का अधिकार होगा तो अनुमान लगाया जा सकता है कि आमजन के लिए कितनी पारदर्शिता होगी?

लोकतांत्रिक प्रावधान यह है कि संसद या विधानसभाओं में विचार के लिए आने वाले महत्वपूर्ण प्रस्तावित विधेयकों-कानूनों का ब्योरा सार्वजनिक किया जाए, ताकि कोई भी सामान्य नागरिक उन पर अपनी राय प्रस्तुत कर सके। भाजपा सरकार आने के बाद आया घरेलू हिंसा रोकथाम विधेयक सीधे संसद में पेश हुआ था। जबकि करोड़ों लोगों के सामान्य जीवन को कानूनी परिधि में लाने वाली व्यवस्था पर पहले सार्वजनिक बहस एवं राय की गुंजाइश होती है। यह तर्क भी दिया जा रहा है कि अब देश में 'डिजिटल क्रांति' हो गई है। इसलिए विभिन्न मंत्रालयों की सूचनाएं निविदाएं प्राप्ति से स्वीकृति तक की जानकारी नेट पर उपलब्ध कराई जा रही है। लेकिन असलियत यह है कि सरकारी मंत्रालयों के नेट सर्वर पर बोझ होने से दो-दो दिन तक संबंधित विभागों की सूचनाएं खुल ही नहीं पातीं। यही नहीं कुछ मंत्रालयों के अधिकारी बड़ी चतुराई से अंतिम समय में सूचनाएं वेबसाइट पर डालते हैं, ताकि कम लोगों तक ही जानकारी पहुंचे। इससे भ्रष्टाचार और गड़बड़ी की गुंजाइश बन जाती है। फिर विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय लोग क्या प्रतिदिन सभी मंत्रालयों-विभागों की वेबसाइट की सार्वजनिक सूचनाएं देख सकते हैं? महत्वपूर्ण सूचनाओं को पहले की तरह कम खर्च पर अखबारों में भी देने से क्या पारदर्शिता का अधिक लाभ नहीं मिल सकेगा? बहरहाल, लोकतंत्र में सरकार की कथनी और करनी में अंतर नहीं होने की अपेक्षा निरंतर बढ़ती रहनी चाहिए।

(लेखक एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया के पूर्व अध्यक्ष हैं। ये उनके निजी विचार हैं)

रिवर्स गियर

ज्ञान गंगा

बुढ़िया की समझदारी

एक बुढ़िया दूसरे गांव जाने के लिए अपने घर से निकली। उसके पास एक गठरी थी और वह पैदल अकेली ही रास्ते पर चली जा रही थी। चलते-चलते वह थक गई थी। उसने रास्ते में एक जगह रुककर थोड़ा पानी पिया और फिर चल पड़ी। वह शाम होने से पहले अपने गंतव्य तक पहुंच जाना चाहती थी। थकान की वजह से उसे अपनी गठरी का बोझ भी भारी लगने लगा था। तभी उसने देखा कि एक घुड़सवार चला आ रहा है। उसे देख बुढ़िया ने उसे आवाज दी। घुड़सवार बुढ़िया के पास आया और बोला - 'क्या बात है अम्मा, आपने मुझे क्यों बुलाया है?' बुढ़िया ने कहा - 'बेटा, मुझे उस सामने वाले गांव में जाना है। बहुत थक गई हूं। यह गठरी उठाई नहीं जाती। तू भी शायद उधर ही जा रहा है। यह गठरी घोड़े पर रख ले। मुझे चलने में आसानी हो जाएगी।' यह सुनकर घुड़सवार ने कहा - 'अम्मा, तू पैदल है। मैं घोड़े पर हूं। गांव अभी बहुत दूर है। पता नहीं तू कब तक वहां पहुंचेगी। मैं तो थोड़ी ही देर में पहुंच जाऊंगा। वहां पहुंचकर क्या तेरा इंतजार करता रहूंगा?' यह कहकर वह चल पड़ा। कुछ दूर जाने के बाद वह सोचने लगा - 'मैं भी कितना मूर्ख हूं। वह बुढ़िया ठीक से चल भी नहीं सकती। क्या पता, उसे ठीक से दिखाई भी देता हो या नहीं? वह मुझे गठरी दे रही थी। संभव है, उस गठरी में कोई कीमती सामान हो। मैं उसे लेकर भाग जाता तो कौन पूछता!' यह सोचकर वह वापस घूमा और बुढ़िया के पास आकर बोला - 'अम्मा, लाओ अपनी गठरी। मैं ले चलता हूं। गांव में रुककर तेरी राह देखूंगा।' किंतु अब बुढ़िया ने कहा - 'न बेटा, अब तू जा, मुझे गठरी नहीं देनी।' यह सुन घुड़सवार चौंकते हुए बोला - 'अभी तो तू कह रही थी कि ले चल! अब ले चलने को तैयार हुआ तो गठरी दे नहीं रही। ऐसा क्यों? यह उल्टी बात तुझे किसने समझाई है?' बुढ़िया मुस्कराकर बोली - 'उसी ने समझाई है जिसने तुझे यह समझाया कि बुढ़िया की गठरी ले ले। जो तेरे भीतर बैठा है, वही मेरे भीतर भी बैठा है। जब तुम लौटकर आए, तभी मुझे शक हो गया कि तुम्हारी नीयत में खोट आ गया है। वरना तुम पहले ही मेरी गठरी ले जाने के लिए तैयार हो जाते।' इस तरह अपनी समझदारी से बुढ़िया लुटने से बच गई।

50 साल पहले

24.10.1965 की नईदुनिया से

जवानों को शुद्ध घी

जयपुर। 'दुश्मनों से लड़ना है तो शुद्ध घी खाओ'। इसे कार्यरूप में परिणत करते हुए राजस्थान के जैतपुरवासियों ने एक क्विंटल शुद्ध घी एकत्र कर सैनिकों को भेजा है।

बाजार भाव (क्विंटल में)

मक्का- 54-56 रुपए।
उड़द- 72-73 रुपए।
तुवर- 80-84 रुपए।
राई- 105-120 रुपए।
मूंग हरा- 92-100 रुपए।

उकसाने की कोशिशों की कालिख

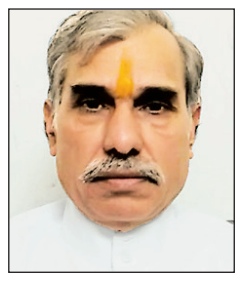

रमेश शर्मा
वरिष्ठ पत्रकार

क्या सुधींद्र कुलकर्णी का कृत्य शिवसेना को चिढ़ाने वाला नहीं था? क्या इंजीनियर राशिद का बीफ पार्टी आयोजित करना उकसाने वाली हरकत नहीं थी? जो कृत्य चिढ़ाने के लिए ही किए जा रहे हों, उन पर प्रतिक्रियाएं दूसरी प्रकार की होती हैं। सीमा के बाहर की गई विनय को भिक्षा और सहनशीलता को कायरता ही कहा जाता है।

'असहिष्णुता' की दो घटनाएं हाल ही में देश में हुईं। एक दिल्ली में और दूसरी मुंबई में। दिल्ली की घटना में जम्मू-कश्मीर के निर्दलीय विधायक इंजीनियर राशिद और मुंबई की घटना में चिंतक सुधींद्र कुलकर्णी के चेहरे पर कालिख पोती गई। दोनों को मीडिया में खूब सुर्खियां मिलीं। इन घटनाओं की निंदा भी खूब की गई है।

निंदा करने वालों की बात अपनी जगह ठीक भी है। सहिष्णुता होनी चाहिए। भारत वैसा देश है भी नहीं कि यदि किसी पुस्तकालय में हमारे अनुरूप पुस्तकें न हों तो उसे जला दो अथवा यदि कोई व्यक्ति हमारे मत के अनुसार न चले, तो उसे मौत के घाट उतार दो। भारत तो वह देश है, जहां वेदांत का खंडन करने वाले को भी ऋषि कहा गया और इस जीवन के बाद के जीवन की कल्पना, मूर्ति पूजा आदि को भी अनुचित करार देने वाले को भी अवतार माना। यही नहीं, श्रेष्ठता का निर्धारण भी शास्त्रार्थ से होता था और ऐसा शास्त्रार्थ जिसके तर्कों, तथ्यों और विवेचना को सारा जमाना सांस रोककर सुन रहा था, की निर्णायक भी एक महिला रही है।

ऐसे देश में यह असहमति की पराकाष्ठा ही है कि किसी व्यक्ति का मुंह काला कर दिया जाए। इसके बाद यदि कोई सहनशीलता घटने पर चिंता जताता है, तो इसे अनुचित नहीं कहा जा सकता लेकिन यह तो तस्वीर का सिर्फ एक पहलू है।

इन दोनों घटनाओं में तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। प्रश्न यह है कि क्या सहिष्णुता एकतरफा ही होती है, क्या इसकी कोई सीमा भी होती है? यदि सीमा है तो कहां तक होगी। जिन लोगों के मुंह काले किए गए वे कौन हैं, उन्होंने ऐसा क्या किया था, जिसके कारण कुछ लोग अपनी जिंदगी, अपना भविष्य दांव पर लगाकर उनका मुंह काला करने के लिए सामने आए। सुधींद्र कुलकर्णी लालकृष्ण आडवाणी के बेहद करीबी रहे हैं। यह माना जाता है कि आडवाणी राजनीतिक सलाह-मशविरा सुधींद्र से करते हैं। यह धारणा भी है कि आडवाणी कुलकर्णी की सलाह पर ही अपनी पाकिस्तान यात्रा के तहत भारत विभाजन का अभियान चलाने वाले जिन्ना की मजार पर गए। इन दिनों वे ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन नामक एक थिंकटैंक चलाते हैं। उन्होंने पाकिस्तान के पूर्व विदेश मंत्री खुर्शीद महमूद कसूरी की पुस्तक का विमोचन कार्यक्रम रखा था। शिवसेना शुरू से ही इसका विरोध कर रही थी, लेकिन वे नहीं माने। शिवसेना पाकिस्तान के हर शख्स

का विरोध करती है। क्रिकेट टीम का भी। शिवसेना का तर्क है कि जो पाकिस्तान हमको सुकून से जीने नहीं दे रहा, आए दिन हिंसा कराता है, सीमा पर घुसपैठ करता है उनके लोगों का सम्मान क्यों? यदि पाकिस्तान के लोगों को भारत में सम्मान कराना है तो वे अपनी सरकार पर दबाव बनाएं। पाकिस्तान सुधरे, हमें चैन से जीने दे, फिर हम भी उसके लोगों को सम्मानजनक स्थान देंगे।

इसके अलावा एक और कारण है। पाकिस्तान से बहुत कलाकार भारत आते हैं। वे फिल्मों में काम करते हैं, टीवी शो करते हैं, कंसर्ट करते हैं, नाम और पैसा कमाते हैं और चले जाते हैं? क्या भारत का कोई गायक वहां जाकर ऐसा कर सकता है? जवाब है नहीं। तब सुधींद्र क्यों उस किताब के विमोचन के लिए उतावले थे, जिसका विमोचन एक बार पाकिस्तान में हो चुका है?

दूसरे सज्जन कश्मीर के निर्दलीय विधायक इंजीनियर राशिद हैं। इन्होंने कश्मीर में बाकायदा बीफ पार्टी का आयोजन किया था। यह पार्टी उस वक्त दी गई, जब देश में गोहत्या और गोमांस खाने पर बहस चल रही थी। कश्मीर कोर्ट ने बाकायदा रोक लगाई, तब राशिद ने गाय समर्थकों को चिढ़ाने के उद्देश्य से बीफ पार्टी रखी। दोनों घटनाएं देश में बहस का कारण बनीं। यह बहस जनसामान्य में उतनी नहीं थी, जितनी मीडिया और सोशल मीडिया में चली। कुछ लोगों को लगा कि देश में लोकतंत्र खत्म हो रहा है। अराजकता आ रही है। लोग गुंडागर्दी से दूसरों को दबाना चाहते हैं।

लेकिन क्या सहिष्णुता की जिम्मेवारी सुधींद्र कुलकर्णी या राशिद की नहीं थी? यदि कुलकर्णी को किसी विदेशी लेखक की पुस्तक का विमोचन रखना था तो वे पाकिस्तान ही क्यों किसी और देश के लेखक की पुस्तक का विमोचन नहीं रख सकते थे? सीमा पर पाकिस्तान की घुसपैठ, आतंकवादियों को दिए गए प्रोत्साहन के कारण हजारों भारतीय सैनिक मारे जा चुके हैं। यदि इसमें जनसामान्य की संख्या जोड़ी जाए तो आंकड़ा लाख के ऊपर जाता है। पाकिस्तान में भी कसूरी ही क्यों, जिनका कार्यकाल भारत के प्रति कटुतात्मक प्रचार के लिए जाना जाता है? सुधींद्र का पाकिस्तान प्रेम नया नहीं है। पर क्या उनका कृत्य शिवसेना को चिढ़ाने वाला नहीं था? क्या इंजीनियर राशिद का कृत्य प्रोवोकेटिव नहीं था? जो कृत्य केवल चिढ़ाने के लिए किए जा रहे हों, उन पर प्रतिक्रियाएं दूसरी प्रकार की होती हैं। सीमा के बाहर की गई विनय को भिक्षा और सहनशीलता को कायरता कहा जाता है। भारतीयों ने सहनशीलता के कारण कितनी जिल्लत झेली है, यह किसी से छिपा नहीं है। इसे याद रखा जाना चाहिए।

rsharmamdn@yahoo.co.in

अधबीच

विकास का लट्टू

ब्रजेश कानूनगो

कुछ बरस पहले तक हमारी सरकारें ठोस कदम उठाया करती थीं। लेकिन बकौल शरद जोशी कदम इतने ठोस हुआ करते थे कि वक्त पर उठ ही नहीं पाते थे। देश से गरीबी हटाने के लिए सरकारें इसी तरह कदम उठाया करतीं थी। इतने सालों बाद भी हर घर में टीवी और हर हाथ में मोबाइल आ जाने के बाद भी गरीबी ज्यों की त्यों विद्यमान है। ऐसा कैसे चल सकता था! कोई नया रास्ता तो खोजा ही जाना था। सो अब हमारे सामने है - विकास का रास्ता। अब विकास पर जोर दिया जा रहा है।

अब सरकारें 'कदम' उठाने के बजाय 'जोर' देने का उपाय अपना रही हैं। उनका मानना है कि जब तक किसी बात पर पर्याप्त जोर नहीं दिया जाता, तब तक काम होता नहीं। यदि कार्य को संभव करना है तो जोर देना ही होगा। इसे 'लट्टू घुमाने' जैसे आसान तरीके से समझते हैं। लट्टू घुमाना है तो उस पर एक रस्सी को जोर से लपेटना होगा, तनिक जोर देकर उसको जमीन पर फेंकना होगा, तब कहीं जाकर उसमें गति उत्पन्न होगी और वह घूमने लगेगा। मतलब यह कि लट्टू को गति देने के लिए उस पर जोर देना जरूरी है। बगैर जोर दिए उसे रफ्तार नहीं दी जा सकती।

इस वक्त जो सबसे लोकप्रिय लट्टू है, वह है - विकास का लट्टू। सरकार विकास के लट्टू को गति देने पर जोर दे सकती है। अब यह काफी कुछ लट्टू की प्रकृति और बनावट पर भी निर्भर करेगा कि वह किस स्मार्टनेस से घूमकर गांवों-शहरों और देश का विकास करता है।

कुछ और चीजें भी होती हैं जो लट्टू के ठीक से घूमने में प्रभाव डालती है, वह है रस्सी या जाल, जिस पर जोर लगाया जा रहा है तथा वह धरातल जिस पर लट्टू को घुमाया जाना है। रस्सी का लट्टू पर भली प्रकार लपेटा जाना और उस पर लगाए जाने वाले जोर का आदर्श परिमाण एक कुशल लट्टूबाज अच्छे से जानता है। जैसे गांधीजी जानते थे। उन्होंने स्वदेशी पर जोर दिया, तो देश ने विदेशी वस्तुओं की होली जला दी थी। सत्याग्रह पर जोर दिया, तो लोग उनके पीछे पीछे चले आए। बापू के जोर देने में बड़ा जोर हुआ करता था। उन्हें पता था जोर देने का सही तरीका। उनका लट्टू जब धरातल पर घूमता था तो अपना उद्देश्य पूर्ण करके ही थमता था।

गांधीजी के इस देश में हम जोर दे रहे हैं कि लट्टू के मैदान में सांप्रदायिक सद्भाव और अहिंसा की हरी दूब खिली हो। लेकिन दलितों-कमजोरों और महिलाओं पर अत्याचार की दैनिक घटनाएं इस मुलायम घास में आग लगा देती हैं। सहिष्णुता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के उजाले पर जोर देने का सोचते हैं तो सही राह दिखाने वाले समाजसेवी और चिंतक मार दिए जाते हैं। गलत के प्रतिरोध की अभिव्यक्ति पर कलाकारों, साहित्यकारों पर उंगलियां उठाई जाने लगती हैं। बहुलतावाद के मुस्कराते चेहरों को असहिष्णुता की कालिख से पोत दिया जाता है। किसानों-गरीबों के हितों की योजनाएं बनाने पर जोर देते हैं तो उसका हिस्सा उन तक पहुंच ही नहीं पाता। दूसरे मुल्कों को हमारे यहां आकर निवेश करने पर जोर देते हैं तो खाद्यान्न, दालें और प्याज तक हमें आयात करना पड़ जाता है।

तो सवाल यह पैदा होता है कि विकास के लट्टू पर जो जोर हम दे रहे हैं, उसकी बहुत सारी ऊर्जा कहां लुप्त हो जाती है? जिस रफ्तार से लट्टू घूमना चाहिए, क्यों नहीं घूम पाता? ऐसी कौन-सी बाधाएं हैं, जिसका घर्षण इस महत्वपूर्ण ऊर्जा का क्षरण या ह्रास कर रहा है? वह कौन-सी बात है, जो विकास और जनहित के लट्टू को भली प्रकार घूमने से रोक रही है? क्या रस्सी गलत है या कि लट्टू की घुरी ही वक्र है, जिस पर उसे घूमना है या हमारा आंगन ही दोषपूर्ण हो गया है? जो भी हो, हमें इस पर जोर देना होगा कि जैसे भी हो विकास का लट्टू अब पूरी गति से निर्बाध घूम सके।

bskanungo@gmail.com

पाठकों की दुनिया

letter@naidunia.com

दाल से बेहाल

'जमाखोरों से 35 हजार टन दाल जब्त' खबर पढ़ी। धनलिप्सा में लिप्त लोगों ने मानो मानवता को तिलांजलि दे दी है। छापे में दालों का इस कदर जखीरा मिलना इस बात का प्रमाण है कि प्रशासनिक तंत्र की लापरवाही या अनदेखी के चलते आम आदमी की जीना किस कदर दुश्वार हो गया है। अब दाल भी नसीब नहीं!

जवाहर डोसी 'पीयूष', महिदपुर

उचित निर्देश

एक जनहित याचिका की सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने सरकार को उचित ही निर्देशित किया कि लोगों को पटाखों के नुकसान से अवगत कराएं। पटाखों से जोखिम तो है ही, पैसों की भी बर्बादी है। वातावरण भी प्रदूषित होता है। सुप्रीम कोर्ट की सलाह पर विचार जरूरी है।

शिरीष सकलेचा, बड़ावदा

संवेदनहीन टिप्पणी

केंद्रीय मंत्री वीके सिंह ने दलित बच्चों को जलाकर मारने की घटना पर संवेदनहीन, गैर-जिम्मेदाराना टिप्पणी कर जले पर नमक छिड़कने की कहावत चरितार्थ कर दी। यह संवेदनहीनता की हद है। ऐसी असहज स्थिति से बचने के लिए मंत्रियों को नियंत्रित रखना जरूरी है। मरहम नहीं लगा सकते, तो उपहास तो न उड़ाएं।

सुधा नाहटा, शांति नगर, रतलाम

कार्रवाई की दरकार

'कानून का मखौल' संपादकीय पढ़ा। जिस तरह चंद लोग विरोध के नाम पर खुलेआम कानून हाथ में लेते हुए अप्रिय घटनाओं को अंजाम दे रहे हैं, वह वाकई चिंतनीय है। इससे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हमारी छवि खराब हुई है। ऐसे अराजक लोगों के खिलाफ सख्त कार्रवाई हो।

मेहबूब खान, कुंदा नगर, खरगोन

चुना गलत तरीका

सब जानते हैं कि कट्टरपंथ विकास में बाधक है। लेकिन जिस तरह साहित्यकारों ने पुरस्कार लौटाए हैं, उसकी तारीफ कम आलोचना ज्यादा हो रही है। दरअसल इन लेखकों को बढ़ती धर्मांधता, असहिष्णुता के खिलाफ जागरुकता के लिए मैदानी कार्य करना चाहिए था, जिसके नतीजे निश्चित ही अच्छे आते।

अनिल नागपुरकर, सुखलिया, इंदौर

बेजा है विरोध

'विरोध में नष्ट न कर दें बहुत कुछ' लेख सटीक लगा। साहित्यकारों में पुरस्कार लौटाने की होड़ लगी है। लेख में सही कहा गया कि हम अतिरेक में जाकर कहीं उस जगह को नष्ट तो नहीं कर डालेंगे, जो कला व साहित्य के सहमतों और असहमतों के लिए पैर रखने की जगह रही है।

चंद्रशेखर कानूनगो, स्कीम 54, इंदौर

बस आरोप-प्रत्यारोप

बिहार चुनाव में उलाहनों और उपहास का खेल चल रहा है। एक-दूसरे को नीचा दिखाने का हरसंभव प्रयास हो रहा है। अपशब्द धड़ल्ले से इस्तेमाल हो रहे हैं। कारोबार, उद्योग-व्यवसाय, कृषि, सड़क, बिजली, पानी आदि मूलभूत मुद्दे गौण हो गए हैं। ऐसे में कौन कहेगा कि यह विकास के नाम पर चुनाव हो रहा है?

प्रेमचंद बापना, संत नगर, उज्जैन

अंतिम पत्र

चुनाव से पहले बहुत जोर-शोर से दावे किए गए थे - 'काला धन लाएंगे...काला धन लाएंगे।' विदेशों से काला धन तो आया नहीं, लेकिन दालें आयात करने की नौबत आ गई। अब तो लोग 'दाल में काला' ढूंढ़ने में लगे हैं।

शकुंतला नेनावा, गिरधर नगर, इंदौर